Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2018 = 6.371, www.srjis.com
PEER REVIEWED JOURNAL, NOV-DEC, 2018, VOL- 6/48

पर्यावरण तथा रोगों का भारतीय इतिहास पर प्रभाव

रंजन कुमार & मनीष शर्मा
स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज, दिल्ली विश्वविधालय

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

पर्यावरण परिवर्तन का अध्ययन करने पर अधिकांश मानव की गतिविधियों का पर्यावरण पर प्रभाव दिखाई देते हैं। प्रकृति में इस परिवर्तन का प्रभाव , चाहे वह मानव द्वारा प्रेरित हों या प्रकृति द्वारा , अनिवार्य रूप से मानव जाति पर रहता है। पर्यावरण, इतिहास का एक बहु विषयक हिस्सा है जो की मानव प्रभाव और प्रकृति दोनों को व्यापक रूप में आकर्षित करता है। इसके कई घटक हैं , पृथ्वी पर मानव का प्रत्यक्ष प्रभाव , मानव द्वारा प्रकृति के संसाधनों का जरुरत से अधिक इस्तेमाल, औपनिवेशिक विस्तार इत्यादि। पर्यावरण के इतिहासकार इन घटकों में से उन परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं जिनसे पर्यावरण की समस्याएं जुडी होती हैं। इसके अलावा अध्ययन का एक अलग हिस्सा है जो की ऐतिहासिक विचारधाराओं के आसपास केंद्रित है और पर्यावरण तथा ऐतिहासिक परिवर्तन पर इसके प्रभाव के लिए विशिष्ट है ।

पर्यावरण और इतिहास

पर्यावरण और इतिहास एक अंत:विषय है जो पर्यावरण , विज्ञान और मानवता तथा उनके संबंध से पनपने वाले विचारों को इच्छानुरूप गहनता से मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत करता है। पर्यावरण का मानव इतिहास पर कभी संक्रमण तो कभी अहसास के लिए सदैव प्रभाव रहा है। मानव ने हमेशा से अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्यावरण का उपयोग किया है। लेकिन जब तक वे अपने विकास के लिए किये जा रहे संसाधनों का इस्तेमाल करने में विवेकपूर्ण रहे, प्रकृति ने भी यथासंभव मानव विकास प्रक्रिया में सहभागिता रखी पर जैसे - जैसे वे अतिव्ययी स्वरुप अपनाने लगे , प्रकृति भी अपने संसाधनों को पुनः एकत्रित करने के लिए पुनर्निर्माण करती रही। इन परिस्थितियों को समझते हुए इस लेख का मुख्य उद्देश्य उन तबाही का अध्ययन करना है जिन्हे समस्याग्रस्त परिस्थितियों के लिए जिम्मेदार माना जाता है। अगर नहीं तो क्या मानव जाती के विरुद्ध कोई और कार्य चल रहा था। इस परिपेक्ष में "लेट विक्टोरियन होलोकॉस्ट" पुस्तक का अत्यधिक महत्व है क्योंकि इस पुस्तक में माईक डेविस ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जटिल जलवायु परिस्थितियों के साथ मानव समस्याओं को सम्बंधित किया है। इस प्रक्रिया में डेविस एक प्रश्न उठाते हैं की क्या भोजन की अनुपलब्धता सूखे की स्थिति की जिम्मेदार मानी जा सकती हैं। इस प्रश्न के उत्तर में इस संभावना पर चर्चा मिलती हैं की एक ऐसा समाज जो की अलग - थलग शिकारी संग्रहणकर्ता स्थिति में हो वहाँ ऐसी संभावना हो सकती हैं पर ऐसे समाज में जो की वृहद हो तथा विकसित हो , इस संभावना की कल्पना करना गलत है। जलवायु में परिवर्तन शायद कुछ लघुकालिक प्रभाव रख सकते हैं पर इसका प्रभाव दीर्घकालिक रहा होगा ऐसा कहना गलत होगा। इनका प्रभाव कभी भी स्थायी नहीं हो सकता हैं तथा बीतते

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

समय के अनुसार ये प्रभाव समाप्त होते जाते हैं। अगर कुछ रह जाता हैं तो वो हैं इन विश्व व्यापी विपदाओं की राजनितिक विरासत है । 1790 के दशक में तीव्र गति के बारंबार उठ रहे 'अल नीनो' के कारण भारत में लाखों लोगों की जानें गयी और जिसका प्रभाव अगली एक शताब्दी तक अस्थिरता के रूप में भारत पर मंडराता रहा। ससे सूखे की स्थिति पैदा हो गयी और भारत भुखमरी से जूझने लगा जिसकी वजह से वर्गों के मध्य खाद्य संकट उभरा और लाखों लोगों के बिच संसाधन की कमी का दबाव उत्पन्न हुआ। 1877 - 1878 में विनाशकारी सूखे की स्थिति आर्थिक संकट के साथ आयी जिसकी वजह से अंतर्राष्ट्रीय बाजार प्रतिस्पर्धा अति तीव्र हो गयी और इसका नकारात्मक प्रभाव कृषक उत्पादन पर पड़ा। यही वह समय था जब भारत भी गेहूं और चावल में अधिशेष पैदा करने वाले बाजार में प्रवेश कर गया। यह उत्पादन पूरी तरह से औपनिवेशिक शक्तियों के निर्यात लाभ के लिए था और इसने भारत में रह रहे लोगों की सामाजिक स्थिति और भी दयनीय की दी थी। 1876 -1877 के बीच ब्रिटेन में हुई ख़राब पैदावार के दौरान मूल्य वृद्धि की समस्या पनपी जिसे नियंत्रित करने के लिए 1877 -1878 के मध्य ब्रिटेन में भारत से कुल 320 मिलियन अनाज का निर्यात किया गया। इसके फलस्वरूप भारत में वस्तुओं वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई जबकि ब्रिटेन के द्वारा यहाँ की आर्थिक स्थिति के लिए सुधार के प्रयास नहीं किये गए। ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतीय आबादी पर निवेश करना व्यर्थ माना क्योंकि उन्हें ऐसा लगता था की भारत की जनसंख्या यहाँ उगाये जाने वाले भोजन की तुलना में कहीं ज्यादा तीव्र गति से बढ़ती हैं। इस कारन भोजन महंगा हो जाता हैं और भारतीय जनसंख्या तनाव और भुखमरी की स्थिति में आ जाती हैं।

माइक डेविस , विलियम डिग्बी के लेखन से उदहारण रूपी अंश लेते हुए लिखते हैं की ब्रिटेन की भूमिका को इतिहास उन असंखय भारतियों की मौत का एक कुख्यात स्मारक मानता हैं। डेविस ने अपने लेखन में कई देशों की अकाल से पूर्व की अज्ञानता का उल्लेख किया हैं। एरिक हॉब्सबॉन का जिक्र करते हुए डेविस मानते हैं की उनके लेखन में उन्नीसवीं शताब्दी के कई वीभत्स अकाल का वर्णन ही नहीं है। अगर इन घटनाओं को लेखन में स्थान दिया जाता तो शायद उपनिवेशवादियों द्वारा असामान्य राष्ट्रों की असमानता को हटाने की एक मुहीम साबित होती। डेविस अपनी पुस्तक में एक प्रश्न रखते है की हम उस तथ्य का वर्णन कैसे करेंगे जहाँ शांति के दौर में पश्चिमी यूरोप से सूखे की स्थिति पूर्ण रूप से समाप्त हो गयी जबकि सभी उपनिवेशों में इसकी वृद्धि हुई एवं इसके कारण कई जानें गयी। डेविस के लिए गरीबों की मौत का आंकड़ा विचार का विषय नहीं बल्कि इसका कारण चिंतन का विषय है और वह मानते है की इसकी संभावना विश्व बाजार के लिए श्रमिक वर्ग के प्रतिगामी शोषण से ज्यादा जुडी हुई है।

डेविस मानते है की तृतीये विश्व आय और संपत्ति की असमानता की उपज था और इसमें उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ज्यादा निर्णायक रूप में बदलाव हुए थे जब गैर यूरोपीय कृषकों को विश्व अर्थव्यवस्था में अधिकृत किया गया था। उनके मतानुसार आधुनिक विश्व व्यवस्था में आर्थिक तथा राजनितिक निगमन की प्रक्रिया की वजह से बड़े पैमाने पर मृत्यु हो रही थी।डेविस , कार्ल पोल्याणी के विचार व्यक्त करते हैं की अंतिम पचास वर्षों में सूखे की स्थिति का मुख्य कारण अनाज का स्वतंत्र बाजार और क्षेत्रीय स्तर पर आय की संभावनाओं में कमी थी। पोलायनी

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सांस्कृतिक अवनति की चर्चा करते हुए यह मानते हैं की यह विचार मार्क्सवादी शोषण की अवधारणा में छिपा मिलता है। अगर स्थानिक की विपदा का कुछ कारण था तो वह उनके मौलिक संस्थानों का विध्वंश था जिसके कारण भारत में बड़ी संख्या में जनसांख्यिक गिरावट हुई थी। इसका कारण भुखमरी या उपनिवेशकों के द्वारा अत्यधिक शोषण नहीं बल्कि ग्रामीण समुदाय का किया गया विध्वंश था। इसलिए यह उत्पादनकर्ता वर्ग को विश्व अर्थव्यवस्था में जोड़े जाने की प्रक्रिया थी तथा इसका एकतरफा रुझान था जिसकी वजह से विश्व के विभिन्न हिस्सों में आय का अंतर बढ़ता गया।

रोग और इतिहास पर इसका प्रभाव

जितने भी शोधकर्ता रोग और इतिहास के विषय पर शोध करते हैं उनमें अधिकांश कभी भी रोग की उपस्थिति और इससे जुड़े मृत्यु के आंकड़ों की ज्यादा चर्चा नहीं करते। ऐसा इसलिए क्योंकि उनकी समझ में ये रोग समाज का एक अभिन्न अंग होते हैं और वे चिकित्सा नृविज्ञान और रोगो के इतिहास के मध्य निकटतम समबन्ध पर विश्वास करते हैं। इतिहास की परख से जुड़ा शोधकर्ताओं का कार्य, रोगों से सम्बंधित लोकवादी समझ और उनकी सामाजिक भूमिका से जुड़ी सांस्कृतिक और सामाजिक प्रतिक्रिया पर आधारित होता है।

रोग को पर्यावरण का हिस्सा मानते हुए हमें ज्ञांत होता है कि रोग सदैव संक्रमण से सम्बंधित रहे हैं। ऐसे कई प्रमाण मिलते जिनसे प्रतीत होता है की महामारी का आगमन कई बार खोजकर्ताओं तथा यात्रियों से सम्बंधित रहा है। यहाँ सूक्ष्मजीवों के संक्रमण के द्वारा ऐसी महामारियों का प्रसार होता रहा है। कई ऐसा मानते हैं की ये सूक्ष्म जीव क्षेत्र विस्तार की प्रक्रिया में भी सहायक होते थे क्योंकि इसके जरिये खोजे गए क्षेत्रों के स्थानिक पर बिमारियों के कारण बचाव के लिए असक्षम हो जाते थे। जिसके उपरांत उन क्षेत्रों का अतिक्रमण सरल हो जाता था। इतिहासकर अल्फ्रेड क्रॉस्बी पाश्चात्य यूरोपीय लोगों द्वारा सुदूर पलायन तथा जनसांख्यिक अधिग्रहण की चर्चा अपने लेखन में करते हैं। जनसांख्यिक अधिग्रहण की इस प्रक्रिया में विनाश तथा मनोबल गिराए जाने का इस्तेमाल कर मूल निवासी पर उपनिवेशक अधिकार अर्जित करते हैं। अपनी पुस्तक में क्रॉस्बी ऐसा मानते हैं की सूक्ष्म जीव , जंगली पौधे , मजबूत नस्ल के जंतु आदि यूरोपीय क्षेत्र विस्तार में यंत्ररचना के रूप में सम्मिलित थे। यहाँ मजबूत नस्ल के जंतु कमजोर नस्ल के स्थानिक जंतुओं पर अपना वर्चस्व कायम करते थे तथा जिसके बल पर खोजकर्ताओं को संसाधनों तथा उत्पादन प्रक्रिया पर नियंत्रण स्थापित करने में सहायता मिलती थी। ठीक इसी तरह सूक्ष्म जीव रोग फैला कर अधिग्रहित क्षेत्रों की प्रतिवाद की क्षमता को कमजोर कर देते थे। ऐसा माना जाता है की यूरोपीय अधिग्रहण की प्रक्रिया की वजह से विश्व के कई क्षेत्रों में बिमारियों का प्रसार हुआ। इस विस्तार की निति तथा आर्थिक शोषण की प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर रोगजनकों का जन्म हुआ , जिससे अन्य प्रतिरक्षित नहीं थे , और महामारियों का फैलाव हुआ। वाणिज्य तथा व्यापार के लिए नयी खोज नए आर्थिक विकास के विकल्प लेकर आयी परन्तु इसके फलस्वरूप अधिग्रहित क्षेत्रों की जनसंख्या पर इसका नकारात्मक प्रभाव रहा।

रोग की परिभाषा में समय के साथ हमें बदलाव मिलते हैं। 2009 के प्रारम्भ में नावेल H1N1 इन्फ्लुएंजा वायरस ने महामारी की परिभाषा में एक प्रकार की अस्पष्टता उत्पन्न कर दी की इन्हे पहचाना कैसे जाए। कई प्रयास हुए ताकि

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

इसे बेहतर तरीके से परिभाषित किया जा सके। किसी ने इसे 'व्यापक रूप की महामारी ' का नाम दिया तो कोई इसकी व्याख्या एक ऐसी बीमारी के रूप में करने लगा जिसका फैलाव और प्रभाव बड़े क्षेत्र पर हुआ हो। इन अस्पष्टताओं में डेविड एम् मोरेंस , ग्रेगोनी के फोल्कर्स तथा अन्थोनी एस फॉसी ने भी इस रोग के नवीनता एवं तीव्रता पर कई प्रश्न उठाए। पर स्पष्ट जवाब से पहले ही रोग तथा महामारी अपनी शक्ल बदलती रही।

412 ईसा पूर्व में , हिप्पोक्रेट्स ने एक महामारी का वर्णन किया जिसे आधुनिक चिकित्सा ने इन्फ्लुएंजा माना तथा इतिहास ने तब से अब तक कई महामारियां का सामना किया। 1918 की इन्फ्लुएंजा महामारी ने सम्पूर्ण विश्व में तक़रीबन 20 लाख जानें ली और 1950 तथा 1960 के दसक का इन्फ्लुएंजा भी इतना ही विनाशकारी रहा। 1897 से 1930 के मध्य की काली मौत में करीब 12 लाख लोग काल के गाल में काबलित हो गए। इसका ज्यादा प्रभाव शहरों पर रहा तथा वहाँ सामाजिक अवयवस्था हुई और शहरों का पतन हुआ। इसकी वजह से जनसामान्य का जीवन अस्त व्यस्त तो हुआ ही , अस्वच्छ तरीके से पलायन हुए , वियोग की समस्या बढ़ी तथा स्थानीय सरकार व्यवस्था द्वारा इसके कमजोर उपाय किये गए। जिसके परिणाम स्वरुप भारत को किसी भी अन्य देश की तुलना में कहीं ज्यादा नुकसान हुआ। चीन तथा इंडोनेशिया दूसरे सबसे ज्यादा प्रभावित राष्ट्र बने परन्तु इन देशों में काली मौत का आंकड़ा भारत की कुल मृत्यु का दो प्रतिशत भी नहीं था। यह आंकड़ा इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है की यहाँ मृतकों की संख्या सर्वाधिक थी और यह आधुनिक महामारी से सबसे ज्यादा भयावह रूप से प्रभावित राष्ट्र था। यह स्थिति हमें भी बाध्य करती है कि हम उन परिस्थितियां तथा उपायों की भी समीक्षा करें जिनके बावजूद महामारी का प्रभाव भारत पर इतना भयावह रहा।

अगर हम रोग की बात करें तो भारत में इसके फैलाव की प्रक्रिया हमें स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। कभी यह उपनिवेशकों के द्वारा क्षेत्र विस्तार की प्रक्रिया के तहत दिखाई देता है, जिसका भारी परिणाम जनसँख्या, अर्थव्यवस्था और इतिहास पर दिखाई देता है , तो कभी बद से बत्तर जीवन शैली एवं रखरखाव की वजह से। इरा क्लेइन, पि पेस्टिस नामक नए स्ट्रेन की चर्चा करते हैं जिसने बॉम्बे सिटी में 1896 की गर्मियों में पहले मूषकों फिर लोगों की जान लेनी शुरू की। ऐसा माना जाता है की यह बीमारी होन्ग कोंग से पानी के जहाज के जरिये भारत में आयी थी। विपुल सिंह भी अकाल की चर्चा करते हैं जिससे भारत में मृत्यु दर में नाटकीय उछाल आया था जिनका कारण कई बीमारियां रहीं जैसे बुखार , पेचिश , चेचक इत्यादि। अकाल के दौर में अत्यधिक संक्रामक बीमारी ,खास कर चेचक, एक घातक रूप ले लेता था। जैसा की डेविड अर्नाल्ड भी बतलाते हैं की बड़े पैमाने पर मृत्यु का कारण चेचक और हैज़ा जैसी बिमारियों का फैलाव ही होता था। परन्तु कई ऐसा मानते हैं की ऐसा कह कर हम ‘अकाल’ और ‘भोजन की कमी’ से जिम्मेदारी को ‘संक्रामक बिमारियों’ पर थोपने का कार्य मात्र करते हैं। जो की गलत है। ऐसा इसलिए क्योंकि चेचक बीमारी लम्बे समय से थी और भारत में लोगों के शरीर में इसकी रोधक क्षमता का विकास हो चूका था। इस बीमारी के उपाय का पहले से मिल रहा वर्णन इस बात की पुष्टि करता है की अठारहवीं सताब्दी में जब अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई तब यह बीमारी भारतीय मूल के लोगों के लिए सामान्य हो चली थीं।

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

इसलिए अत्यधिक संख्या में मृत्यु का कारण बीमारी नहीं बल्कि भोजन की कमी थी जो की अंग्रेजी शाषण की प्रशासनिक विफलता की वजह से उत्पन्न हो रही थी। सूखे की स्थिति, बाढ़ , चेचक तथा हैज़ा जैसी समस्याओं के स्थान पर अंग्रजी शाषण द्वारा कर निति में किया गया बदलाव इस विपदा के लिए ज्यादा जिम्मेदार रहा था। इन बातों से ऐसा प्रतीत होता है की भारत में बीमारियां सदैव विद्यमान थीं तथा इसके उपाय के रूप में चिकित्सक एवं धार्मिक व्यवस्थाएं होती रहीं थी। कभी इन बिमारियों के प्रभाव अधिक रहे तो कभी कम पर इनसे होने वाली क्षति की ज्यादा जिम्मदारी शाषण व्यवस्था की विसंगति में निहित थीं।

1918-20 के बॉम्बे फ्लू स्पेनिश बुखार की अगर बात करें तो भारत में एक और इन्फ्लुएंजा महामारी की जानकारी हमें मिलती है जो की विश्वव्यापी स्पेनिश फ्लू की किस्म मानी जाती है। इस महामारी में भारत की कुल आबादी का 5% हिस्सा कल के गाल में कबलित हो गया। अगर मृत्यु के आंकड़े का सूक्ष्म अध्ययन किया जाए तो कुल मौत का एक बड़ा हिस्सा भारत के उन जिलों में था जो अंग्रेजों के शासन के अंतर्गत थे। केनेथ हिल भी अपने लेखन में इस अस्पष्टता का वर्णन करते है की महामारी का व्यापक असर उन राज्यों में अधिक क्यों रहा जो अंग्रेजों द्वारा संचालित थे। भारत में काली मौत (प्लेग) के सन्दर्भ में इरा क्लेइन मानते है की यहाँ इस बीमारी का फैलाव का कारण मानव तथा मूषकों का आस पास जीवन यापन करना था। इस बीमारी का घातक स्वरुप आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में ज्यादा रहता है क्योंकि वहाँ साफ सफाई तथा जीवन के स्तर में कमी होती है। जिन राष्ट्रों में जलवायु की परिस्थियाँ इस बीमारी के अनुकूल थीं उनसे भी कही ज्यादा इस बीमारी का प्रभाव भारत में दीखता है क्योंकि महामारी में यहाँ का जीवन स्तर एक बड़ी जनसँख्या को इसकी चपेट में आने के लिए बाद्ध्य कर देता था। जब हम इसके जड़ तक जाते है तो ज्ञांत होता है की भारत की यह स्थिति अज्ञानता के फलस्वरूप नहीं थी बल्कि उपनिवेशकों के गैर जिम्मेदाराना रवैये की वजह से थी। इसपर इरा क्लेइन यह प्रश्न करते हैं की क्या यह भारत का अज्ञेयत्व माना जाए या पश्चिमी नीतियों में कुछ खोट थी। ऐसा इसलिए क्योंकि इन परिस्थितियों में जहा वाणिजय पर लगाम लगाई जानी थी , अनाज के आयत निर्यात को सिमित किया जाना था , उसके बजाय यहाँ स्वतंत्र बाजार कि नीति को पारित किया गया। अनाज और अन्नागार जो की मूषकों के प्रजनन का केंद्र तो थे ही साथ ही कुपोषित श्रमिक का कार्य क्षेत्र भी होते थे। प्रश्न यह उठता है कि इस महामारी के लिए गरीबों की अनुचित जीवन यापन की स्थिति और अस्वक्षता जिम्मेदार थी या फिर उपनिवेशकों का भौतिक दृष्टिकोण। अनाज तथा लोगों के आवागमन पर अवरोध , सामाजिक दुरी आदि जहाँ इस बीमारी के फैलाव को बाधित कर सकते थे उसके स्थान पर भारतियों को अज्ञानता के अंधेरे में रखना , बिना जानकारी के चिकित्सा व्यवस्था का निरंतर विरोध करने देना भी प्रशाषणिक दोष माना जा सकता है ।

निष्कर्ष

अन्वेषण से औपनिवेशिक शासन और अब वर्तमान स्थिति में ऐतिहासिक परिवर्तन के इस क्रम में , हम पाते हैं की पर्यावरण की परिस्थितियों तथा बीमारियों के परिणामस्वरूप भारत में मृत्यु दर में काफी वृद्धि हुई थी। ऐतिहासिक दृश्टिकोण से इसकी समीक्षा किये जाने पर ज्ञात होता है की इन आपदाओं तथा बीमारियों के कारण होने वाली मृत्यु

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

के साथ साथ इनका एक सकारात्मक प्रभाव भी रहता था। यहाँ सुक्ष्म जीव नियमित रूप से अपनी प्रतिरक्षा का निर्माण करते थे तथा मानव विपदाओं के अनुसार निरंतर खुद में बदलाव लता रहता था। जिसप्रकार बाढ़ अगर बड़ी संख्या में मौत , पलायन का कारण बनती थी तो साथ साथ खेती की बेहतर उर्वरक भूमि भी उपलब्ध कराती थी। ठीक उसी प्रकार महामारी एक प्राकर्तिक स्थिति थी जिससे समाज चिकित्सा तथा उपकरण के विकास के लिए बाध्य होता था ताकि मानव अपनी प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि कर सके। परन्तु शासन व्यवस्था में कमी आतंरिक रूप से सामाजिक , आर्थिक परिस्थितियों को कमजोर करता था। भारतीय अनुभव में , विकास से जुडी गतिविधियों ने सामाजिक तथा पर्यावरणीय व्यवधानों को प्रेरित किया तथा मृत्यु दर को इससे बढ़ावा मिला। इसलिए विभिन्न स्तरों पर नीतियां एवं प्रशासनिक विफलता, आर्थिक , सामाजिक और सांस्कृतिक विघटन के लिए पर्यावरण और रोग से कहीं ज्यादा जिम्मेदार कारण थे।

सन्दर्भ :

Brian Fagan, Floods Famines and Emperors; El Nino and the Fate of Civiliation. Published by Basic Books, 1999

Davis, Mike, Late Victorian Holocausts, El Nino Famines and the making of the Third World, (Verso, London New York), 2001

Karl Polanyi, The Great Transformation, Boston 1944

Karl Polanyi, The Great Transformation, Boston 1944, pp. 159-160

Warwick Anderson, Diseases, Culture and History, Health and History Vol. 1, No. 1 (1998), published by: Australian and New Zealand Society of History of Medicine, inc.

Alfred W. Crosby, Ecological Imperialism: The Overseas migration of Western Europeans as a biological phenomenon, Cambridge University Press' 1986

David M. Morens, Gregory K. Folkers and Anthony S. Fauci, what is Pandemic? The Journal of Infectious Diseases, , Pub. Oxford University, Press Vol. 200, No. 7, October' 2009

Youri Ghendon, Introduction to pandemic Influenza through history, World Health Organization, Geneva, Switzerland

Ira Klein , Plague, Policy and popular unrest in British India , Modern Asian Studies, Vol. 22. No. 4 (1900)

Vipul Singh, Speaking Rivers: Environmental History of a Mid Ganga Flood Country, 1540-1885 (Delhi: Primus, 2018)

David Arnold, Hunger in the Garden of Plenty: The Bengal Famine of 1770, Dreadful Visitations: Confronting Natural Catastrophe in the Age of Enlightenment, ed. Alessa Johns, New York and London: Routledge, 1999

Kenneth Hill, Influenza in India 1918: excess mortality reassessed, Genus Vol. 67, No. 2, Revisiting Mortality crisis of the past, May-Sep' 2011, pp. 9-29

Copyright © 2018, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies